International Journal of Sanskrit Research 2015; 1(6): 26-28

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2015; 1(6): 26-28
© 2015 IJSR
www.sanskritjournal.com
Received: 16-07-2015
Accepted: 18-08-2015

Shrutakirti Shantaram Deshpande
C/O Mr. Mahesh M. Ganorkar
Shikshak colony, Bhaktidham
Mandir road, Chandur Bazar
444704, Dist. Amravati

Correspondence
Shrutakirti Shantaram Deshpande
C/O Mr. Mahesh M. Ganorkar
Shikshak colony, Bhaktidham
Mandir road, Chandur Bazar
444704, Dist. Amravati

श्रीवासुदेवानन्द सरस्वती इन्होंने किया हुआ नास्तिक दर्शनोंका खण्डन

Shrutakirti Shantaram Deshpande

भारतीय संस्कृतीका संरक्षण और संवर्धन अनेक धर्मसंप्रदायोंके द्वारा हुआ हैं। उनमेंसे दत्तसंप्रदाय एक महत्त्वपूर्ण संप्रदाय हैं । इस संप्रदायके अनेक अवतारी पुरुषोंमेंसे श्रीवासुदेवानन्द सरस्वती (टेंबे स्वामी) महाराज एक अवतारी पुरुष, अर्वाचीन कालमें हुए । इनका अवतार धर्मग्लानी दूर करके वैदिक धर्मकी पुनर्स्थापना करनेके लिए हुआ था । आपने अपने जीवन में वर्णाश्रमधर्मका पालन करके एक आदर्श समाजके सामने रखा । ' आधी केले मग सांगितले ' ऐसा उनका आचरण था । तत्त्व और व्यवहार इसका समन्वय उनके जीवनमें देखने को मिलता हैं । उनका जीवन परिचय संक्षिप्तरूप से करेंगे ।

श्रीवासुदेवानन्द सरस्वती (श्रीमहाराज) महाराजका जीवन परिचय

श्री गणेश टेंबे और सौ.रमाबाई श्रीमहाराजके मातापिता थे । इनका जन्म माणगांव में श्रावण कृ. पंचमी शके 1776 में हुआ । बचपनमेंही अपने दादाजी हरिभट्टजी से उन्होंने रूपावली, समासचक्र, अमरकोश, नित्यस्त्रोत्रपाठ, शिक्षा, अष्टाध्यायी इन ग्रंथोका अध्ययन किया । आठ वर्ष की आयुमें उपनयन संस्कार के बाद प्रातः संध्या, सायं संध्या, नित्य गुरूचरित्रपठन चालु किया । वेदमूर्ती तात्या भट उकिडवे के पास वेदाध्ययन किया । याज्ञिकी की शिक्षा शंभूशास्त्री साधले से ग्रहण की । पौराहित्य कर्म करते करते धर्मशास्त्र और धर्मविधी का भी अभ्यास उन्होंने किया ।

अपनी माँ की इच्छासे उन्होंने अन्नपूर्णासे विवाह करके गृहस्थधर्म का स्वीकार किया । गृहस्थधर्म निभाकर भी संसार में उनका मन कभी रत नही हुआ । कुछ दिनों बाद श्रीदत्तप्रभूका दृष्टान्त उनको हुआ और वे नरसोबा वाडी गए । वहाँ श्रीगोविन्दस्वामी और श्री मौनीस्वामी इन दो अधिकारी संन्यासिओंके साथ उनकी भेंट हुई । श्री गोविन्दस्वामीने उनको दत्तोपासना करने के लिए कहा । साक्षात् श्रीदत्तप्रभूने उनको मन्त्रदीक्षा दी । उसके बाद श्रीमहाराजका संपूर्ण जीवन श्रीदत्त– प्रभूके आज्ञासे ही व्यतीत हुआ ।

इसके बाद श्रीदत्तप्रभूने सात साल माणगांव में रहने की आज्ञा दी । श्रीमहाराजने माणगांव में श्रीदत्तप्रभूका मंदिर बनवाकर वहाँ श्रीगुरूद्वादशी, दत्तजयंती इ. अनेक उत्सव मनाने को प्रारंभ किया । माणगांव एक तीर्थक्षेत्र बना । मंदिर में अनेक वस्तुएँ, पैसे लोग भगवान को चढाते थे । लेकीन श्रीमहाराजने व्यक्तिगत उपयोग के लिए उन वस्तुओंको हाथ भी नही लगाया । इतनी उनकी वृत्ती निःस्पृह, निरिच्छ थी । सात सालबाद श्रीदत्तप्रभू की आज्ञा से उन्होंने माणगांव छोडा ।

नरसोबावाडीमें कुछ दिन रहने के बाद उत्तर दिशा की ओर प्रस्थान किया । अन्नपूर्णाबाई साथ में थी । गंगाखेड में उनका देहान्त हो गया । उनका और्ध्वदैहिक विधि संपूर्ण होने के बाद तुरन्त श्रीमहाराज ने संन्यासदीक्षा ग्रहण की । उज्जैन में श्रीनारायणानन्द सरस्वती से दण्ड ग्रहण किया ।

सर्वत्र वर्णाश्रमका लोप हो चुका हैं, इसलिए संपूर्ण भारतखंडमें पदभ्रमण करके लोगोंको उपदेश करो और धर्ममार्ग प्रस्थापित करों ' ऐसा आदेश श्रीदत्तप्रभूने दण्डग्रहण के बाद श्रीमहाराज को दिया । इसलिए उन्होंने जीवनभर भारत की पदयात्रा की । चातुर्मास में केवल एकही स्थानपर अधिक काल रहें । उनके 24 चातुर्मास हुए। स्थान स्थान पर वें लोगों को शास्त्रीय विषय समझाके देते थें । सायंकालमें पुराणकथा बताते थे । सर्व विषय सप्रमाण, सोपपत्तिक पद्धतीसे बताने की उनकी शैली उत्कृष्ट थी । प्रवचन के बाद वेदवाक्योंका अर्थ बताते थें ।

संन्यासी होने से उनके पास वस्तुओंका संग्रह नही था । फिरभी उन्होंने 8 संस्कृत ग्रंथ, 5 मराठी ग्रंथ और अनेक स्तोत्रोंका निर्माण किया । द्विसाहस्री इस अपने संस्कृत ग्रंथ पर, 15 साल बाद, ग्रंथ सामने न होते हुए भी, स्मृति के आधार पर भाष्य लिखना, उनके लोकोत्तर प्रज्ञा का द्योतक हैं । इन ग्रंथोंका निर्माण प्रायशः चातुर्मास कालमेंही हुआ हैं । चातुर्मास के दो महिने के कालावधीमें अनेक लोग उनके पास अध्ययन के लिए आते थें ।

श्रीमहाराज प्रत्येक व्यक्ती की इच्छानुसार उपनिषद्भाष्य, पंचदशी, जीवन्मुक्तिविवेक, मनुस्मृति इ. विविध प्रकारके ग्रंथ उनको पढाते थें । योगाभ्यास के जिज्ञासूओंको योग भी बताते थें । अनेक धर्मकार्य जैसे ऋग्वेद स्वाहाकार, गायत्री पुरश्चरण इ. उन्होंने लोगोंस करवाएँ । समाज को फिर से भगवद्भक्ति के मार्गपर लाकर खडा किया और उस मार्गपर चलने को बाध्य किया।

श्रीमहाराजका आखरी चातुर्मास गरूडेश्वर को हुआ और जीवन के अन्त तक वे वही रहें । शके 1886, जेष्ठ प्रतिपदा के दिन त्राटक करके, दीर्घ प्रणवोच्चार करके उन्होंने प्राणोंका त्याग किया और परब्रह्म में लीन हुए ।

श्रीमहाराजकी ग्रंथसंपदा उनकी तत्त्वज्ञान विषयक दृष्टि को प्रतिपादित करती हैं । आधुनिक काल में अद्वैत वेदान्त के तत्त्वज्ञान का प्रचार और प्रसार करके अद्वैत मत पुनर्स्थापीत करने में श्रीमहाराज के ग्रंथोने महत्त्वपूर्ण कार्य किया। अन्य तात्विक विचारोंका खण्डन करके अद्वैतमतकी स्थापना की और दत्तसंप्रदाय की नींव भी अद्वैतमतमेंही हैं ये सिद्ध किया। नास्तिक दर्शनोंका खण्डन श्रीमहाराजने कैसे किया ये समझने के लिए प्रथम नास्तिक दर्शन के सिद्धान्तोंको समझना होगा।

नास्तिक दर्शनोंके सिद्धान्त

चार्वाक, बौद्ध और जैन ये तीन नास्तिक दर्शन हैं । ये दर्शन वेदों को प्रमाण नहीं मानते ।

चार्वाकमत

चार्वाक मत में दो पुरुषार्थ हैं – अर्थ और काम । उनके विचार में मिष्टान्न भोजन, विषयप्रधान गायन आदिका श्रवण, सुंदरस्वरूप का अवलोकन, सुगंधित वस्तुओंका गंधग्रहण व स्त्री–पुत्र इ. की ममता इन सबसे जो सुख मिलता हैं वही पुरुषार्थ हैं । स्वर्ग, नरक, धर्म, मोक्ष जैसी काल्पनिक वस्तुएं पुरुषार्थ नहीं हो सकती। सुख देनेवाली वस्तुओंका स्वीकार कर दुःख देनेवाली वस्तुओंका त्याग करना चाहिए ऐसी चार्वाक नीती हैं ।

पृथ्वी, आप, तेज, वायु ये चार भूत चार्वाक मानते हैं । इन चार भूतोंसे ही देह में चैतन्य उत्पन्न होता हैं ऐसा वे मानते हैं । इसके लिए उन्होंने दृष्टान्त दिया हैं कि जैसे कात, सुपारी, चुना इनके संयोग से लाल रंग उत्पन्न होता हैं जो इसमें से किसी एक में भी नही है, वैसे ही जड, अचेतन भूतोंसे चैतन्य की उत्पत्ति स्वाभाविक ही हैं । देहाकार में परिणत होनेवाले ये चार भूत नष्ट होने के बाद चैतन्य भी नष्ट होता हैं ।

केवल चैतन्यविशिष्ट देह ही आत्मा हैं ऐसा चार्वाक मानते हैं । क्योंकि शरीर से भिन्न कोई आत्मा नाम की वस्तु हैं ऐसा प्रमाण नही हैं । प्रत्यक्ष प्रमाण ही चार्वाक मानते हैं । इसलिए प्रत्यक्ष दुग्गोचर न होनेवाला ईश्वर वे नही मानते । प्रतिकुल जीवोंका नियमन और अनुकुल जीवोंका रक्षण जो करता हैं वो ईश्वर हैं ऐसा वे मानते हैं । इसलिए कर्मफल, धर्म, मोक्ष ये सब काल्पनिक हैं ऐसा उनका कहना हैं । अग्निहोत्र, वेद, कर्मकाण्ड, भस्मलेप, वर्णाश्रम इन सबका पालन करनेवाले लोग असत् मार्ग से अपनी आजीविका चलाते हैं ऐसा चार्वाक मानते हैं ।

इस तरह चार्वाक जडवाद (देहात्मवाद) को स्वीकार करते हैं ।

बौद्धमत

बौद्ध धर्म के संस्थापक गौतम बुद्ध थे । इन्होंने जो तत्त्वज्ञान का उपदेश किया वह बौद्ध मत वा सौगत मत के नाम से जाना जाता हैं । उनके अनेक शिष्यसंप्रदायोंमेंसे माध्यमिक, योगाचार, सौत्रान्तिक और वैभाषिक इन चार मतोंको ही दर्शनकारोंने मान्यता देकर उनका खण्डन किया हैं ।

बौद्ध दर्शन के प्रमुख सिद्धान्त हैं – 1) सर्वं क्षणिकम् 2) सर्वं दुःखम 3) सर्वं स्वलक्षणम् 4) सर्वं शून्यम् ।

1) जो पदार्थ अर्थक्रियाकारी हैं वो सत् हैं, इसलिए क्षणिक हैं ।
2) समस्त संसार दुखात्मक हैं ऐसा सभी दर्शनकारोंका मानना हैं। क्योंकि संसार दुखःरूप हैं। इसलिए संसारसे निवृत्ति पाने का उपाय सभी दर्शनोंने बतलाया हैं । इसलिए सर्वं दुःखम् ऐसा बौद्ध कहते हैं ।
3) प्रत्येक पदार्थका अपना स्वतंत्र लक्षण होता हैं । वह किसी अन्य वस्तू जैसा नहीं होता और पदार्थ क्षणभंगूर होता हैं ।
4) सब क्षणिक हैं ' इस उपदेश से पदार्थ का स्थायित्व, संसार का सुखरूप होना, सर्व सत्यत्व, सलक्षणत्व इन सबकी निवृत्ती होकर ' सर्वं शून्यम् ' सिद्धान्त स्थापित होता हैं । सत्, असत्, सदसत् व न सत् न असत् इन चार त्तवोंसे रहित शून्य तत्त्व हैं।

जैन मत

वर्धमान महावीर ये जैन धर्म के २४ वे तीर्थंकर हैं । जैन मत के अनुसार जीव, अजीव, पाप, पुण्य, आस्रव, संवर, बंध, निर्जर और मोक्ष ये नौ तत्त्व हैं । अर्हत ने बताए हुए इन नौ तत्त्वोंपर दृढचित्त होकर श्रद्धायुक्त अंतःकरण से जो विश्वास रखता हैं, उसको ज्ञान और दर्शन का लाभ मिलता है। चारित्र्य की योग्यता प्राप्त होती हैं। और वही मोक्ष को प्राप्त कर सकता हैं ।

जैन दर्शन में प्रत्यक्ष और परोक्ष प्रमाणोंका स्वीकार किया गया हैं । अनन्त व अपरिमत धर्मयुक्त वस्तु इन दो प्रमाणोंका विषय हैं । उत्पत्ति, नाश और स्थिती इन धर्मोंसे युक्त वस्तु सत् होती हैं । ऐसी सत् वस्तु का संबंध त्रिकाल से होता हैं। प्रत्येक पदार्थ अनिश्चित स्वरूपका होता हैं । किसी भी पदार्थ को सत् या असत् नहीं कह सकते । इसके आधारपर सप्तभंगी नय सिद्धान्त जैन दर्शन में बताया गया हैं । इस सिद्धान्तसे अनेकान्तवादका कथन जैनोंने किया हैं । उन्होंने ईश्वर का अस्तीत्व अस्वीकार किया हैं । स्वयंचलित कर्मोंका नियम व नित्य पुद्गलोंका समुदाय इनसे समस्त संसार की व्यवस्था होती हैं, ऐसा उनका मत हैं ।

नास्तिक दर्शनोंका श्रीमहाराज द्वारा खण्डन

श्रीमहाराज इन सभी नास्तिक दर्शनोंके मतोंका खण्डन किया हैं । चार्वाक शरीर ही आत्मा हैं ऐसा मानते हैं । पुत्र को आत्मा माननेवाले चार्वाकोंका खण्डन इससे होता हैं । हुण्डासुर नामक दैत्य शरीरको ही आत्मा समझता था, इसलिए उसके मृत्युका कारण होनेवाला आयुराजके छोटेसे पुत्रका उसने अपहरण किया और उसको भक्षण करनेयोग्य समझा । ' स्त्री, पुत्र, धन आदि पुनः प्राप्त कर सकते हैं, किन्तु ये शरीर पुनः प्राप्त करना दुर्लभ हैं, इसलिए किसी भी प्रकार से इस शरीर की रक्षा करनी चाहिए ' । इस प्रकार का उपदेश हुण्डासुर के गुरूने उसको किया था । इसलिए हुण्डासर उस बालक को भक्षण करनेयोग्य समझता था ।[1]

आत्मा क्या हैं ? शरीरही आत्मा हैं क्या ? इस प्रश्न के उत्तर में श्रीमहाराज कहते हैं–

स्वर्गादि भोगोंका उपभोग लेने के बाद आत्मा स्त्रीगर्भ में प्रवेश करता हैं । इससे आत्माही शरीर हैं इसका निरसन होता हैं ।[2] शरीर पंचमहाभूतोंसे बनता हैं अगर उसमें आत्मा नही हैं तो वह अचेतन, जड शरीर ही रहता हैं ।[3]

भिन्न भिन्न विषयोंका सेवन भिन्न भिन्न इन्द्रियोंके द्वारा होता हैं । भोग भोगनेवाला आत्मा इन भोग के साधनोंसे अलग हैं, मतलब शरीर से भिन्न हैं । परलोक प्राप्ती शरीर को नही अपितु आत्मा को होती हैं । इस तरह 'शरीर ही आत्मा हैं', इस चार्वाक मत का निरसन करके 'आत्मा शरीर से भिन्न हैं' ऐसा श्रीमहाराजने कथन किया हैं ।

बौद्ध मत का खण्डन सांख्य लोगोंनेही अखण्ड पुरुष मानकर किया हैं । परस्परभिन्न, साकार और क्षणिक विज्ञानतत्त्व हैं, इससे भिन्न बाहय पदार्थ नही होता । ऐसा बौद्ध मत हैं । जीव और ईश्वर क्षणिक ज्ञानसंतानरूप हैं । चार प्रकारके गन्धादि परमाणुओंके समुदायसे भूत, भौतिकरूप संपूर्ण सृष्टि की उत्पत्ति होती हैं । इस बौद्धमत का खण्डन श्रीशंकराचार्यके द्वारा समुदायाधिकरण (2/2/18) में किया गया हैं, वही श्रीमहाराज का भी मत हैं । उनके मतानुसार अचेतन परमाणु और स्कंध इनका समुदाय करनेवाला कौन हैं यह बात बौद्ध लोग नहीं बता सकते। क्योंकि आत्मासहित सब वस्तुएँ क्षणिक हैं ऐसा बौद्ध मानते हैं । अपने आप

समुदाय बनता हैं ऐसा कहनेसे हमेशा समुदाय बनेगा । समुदाय बनानेवाला कोई नही हैं, इसलिए समस्त संसार लुप्त होगा । अविद्यादि पदार्थ एक दुसरे के कारण होने से संसार संभव हैं ऐसा बौद्ध मानते हैं । किन्तु समुदायरूप अविद्यादि पदार्थ कैसे उत्पन्न होते हैं यही बात बौद्ध स्पष्ट नहीं कर सकते । इसलिए क्षणिक परमाणुओंका मिलन किसके कारण हैं, इसका उत्तर बौद्ध नहीं दे सकते । जड पदार्थोंका अपनी स्वतंत्रतासे समुदाय नही बन सकता । इस प्रकार बौद्ध मतका खण्डन करके जीव और ईश्वर की क्षणिक संतानरूपता नही हैं ऐसा श्रीमहाराजने प्रतिपादित किया हैं।[4]

पदार्थका सदसत् स्वरूप सर्वदा रहता हैं । इस प्रकार अनेकान्तवाद जैनोंने प्रतिपादित किया और प्रत्येक वस्तुकी अनेकरूपता बतायी हैं । एक ही वस्तुमें सत्, असत् ऐसे परस्परविरूद्ध धर्म नही हो सकते । सत् वस्तु सर्वदा सत् रहती हैं वह कभी असत् नहीं हो सकती हैं । जो वस्तु अस्तीत्व में नही हैं, वह कभी भी नहीं रहती, जैसे खपुष्प, शशशृंग इ.। इसलिए निश्चितरूपसे वस्तु सत् वा असत् होती हैं । वस्तु अनेकस्वरूपी होने से उसके स्वरूप के विषयमें निश्चितरूपसे जैन लोग कुछ नहीं बोल सकते । किन्तु उनका जो निश्चय 'वस्तु अनेकस्वरूपी हैं ' ये भी योग्य नही हैं। निश्चय एक पदार्थ होने से उसको भी सप्तभंगी न्याय से अनिश्चित स्वरूप ही प्राप्त होगा । इसलिए जैनोंका वस्तु के स्वरूप के विषयमें निश्चय न होने से ये शास्त्र भी श्रीमहाराजने निरस्त किया।

निष्कर्ष

चार्वाक, जैन, बौद्ध इन नास्तिक दर्शनोंका और न्याय–वैशेषिक, सांख्य–योग इन आस्तिक दर्शनोंका भी खण्डन करके इन सभी शास्त्रोंका तात्पर्य एकही हैं ऐसा श्रीमहाराज कहते हैं । और वो तात्पर्य अद्वैतमतमें हैं ।[6] जैसे समस्त नदीओंका जल समुद्रमें जाके मिलता हैं, वैसेही सब शास्त्रोंका तात्पर्य एकमेव ब्रह्ममें ही हैं ।[7]

तदर्थं सर्व शास्त्राणि बोधयन्ति प्रकारत :।
मोहमात्रनिरासे हि पर्यवस्यन्त्यनुक्रमात् ।।37।।[8]

सभी शास्त्र परस्परविरूद्ध सिद्धान्तोंका प्रतिपादन करते हैं । किन्तु वे विरूद्ध नही अपीतु एकही दिशा की और इशारा करते हैं – अद्वैत । शास्त्रोंके श्रवणसे क्रमसे चित्तशुद्धी होती हैं । चित्तशुद्धीके अनन्तर अज्ञान का अंधःकार नष्ट होकर ज्ञान का सूर्य प्रकाशित होता हैं । हृदयकी संशयग्रंथियाँ नष्ट होकर आनन्दमय स्वरूपकी प्राप्ती होती हैं ।[10]

शास्त्र हमें ज्ञान ही देते हैं । कोई भी शास्त्र अनुपयुक्त नहीं होता । शास्त्रके श्रवणसे यथाक्रम चित्त निर्मल होता हैं । शुद्ध चित्तमें स्वरूप प्रतिबिंबीत होता हैं। स्वरूपकी प्राप्ती यही अद्वैत हैं । इसलिए प्रत्येक शास्त्र का तात्पर्य अन्त में अद्वैततत्त्वका ही प्रतिपादन करता हैं ऐसा श्रीमहाराज कहते हैं ।

संदर्भसूचि

सभी ग्रंथ श्रीवासुदेवानन्द सरस्वतीके हैं।

1. श्रीदत्तचम्पू, तृतीयस्तबक, श्लोक 33
2. श्रीगुरूसंहिता, अध्याय 21, श्लोक–15–17
3. तदेव, श्लोक 4
4. शिक्षात्रय, वृद्धशिक्षा, श्लोक 1, टीका
5. तदेव, श्लोक 13, टीका
6. श्रीदत्तपुराण, अष्टक 3, अध्याय5, श्लोक 37
7. श्रीदत्तचम्पू, प्रथम स्तबक, श्लोक 70
8. श्रीदत्तपुराण, अष्टक 3, अध्याय 8, श्लोक 37
9. गुरूः प्राह क्रमादेतैश्चित्तशुद्धिर्भविष्यति ।
10. तदेव, अष्टक 3, अध्याय 5, श्लोक 41